[2019] 3 एस.सी.आर. 273

सतीशचन्द्र रतनलाल शाह

बनाम

गुजरात राज्य एवं एक अन्य

(दाण्डिक अपील संख्या 9 वर्ष 2019) 3 जनवरी, 2019

[एन वी रमना और मोहन एम शांतनगौदर, न्यायमूर्तिगण।]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973: धारा 482 – धाराएँ 406,420 और 417 भा०द०स० के तहत आरोप–पत्र को अभिखण्डित करना – अपीलार्थी–अभियुक्त के खिलाफ मामला यह था कि उसने धन उधार देने वाली कंपनी से ऋण प्राप्त किया था जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 2 निदेशक था – अपीलकर्ता ने राशि वापस नहीं किया बल्कि प्रत्यर्थी सं० 2 को गंभीर परिणामों की धमकी दी और परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी सं० 2 ने एफआईआर दर्ज कराया– अपीलकर्ता ने एफआईआर को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका दायर किया – इस बीच, अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 406,420 और 417 भा०द०स० के अंतर्गत आरोप–पत्र दायर किया गया – अपीलकर्ता ने धारा 482 याचिका में संशोधन की मांग करते हुए प्रार्थना पत्र दाखिल किया, जिसमें उसने आरोप–पत्र को भी अभिखण्डित करने की मांग किया – उच्च न्यायालय ने याचिका को खारिज कर दिया और परीक्षण न्यायालय को मुकदमे को पूरा करने का निर्देश दिया और सम्प्रेक्षित किया कि प्रथम दृष्टया धारा 420 के अंतर्गत धोखाधड़ी का अपराध बनता था – अपील पर, अभिनिर्धारितः एक वादे, करार या संविदा का उल्लंघन मात्र, वास्तव में, बिना न्यास के स्पष्ट केस के बिना धारा 405 भा०द०सं० में निहित आपराधिक न्यास भंग का अपराध नहीं बनाता है – परिवाद में या किसी भी सामग्री में इस तथ्य की ओर इंगित करने वाला कुछ भी नहीं है कि किसी भी संपत्ति को अपीलकर्ता को सौंपा गया था जिसे उसने बेईमानी से अपने उपयोग के लिए परिवर्तित किया था जिससे

कि धारा 406 भा०द०सं० के तहत दंडनीय धारा 405 के अवयवों को संतुष्ट किया जा सके– धारा 415 के तहत आरोप के संबंध में, ऋण राशि वापस करने के लिए अपीलकर्ता की मात्र अक्षमता छल के लिए दाण्डिक अभियोजन को उद्भूत नहीं कर सकता, जब तक कि कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण आशय संव्यवहार के बिलकुल प्रारंभ से ही दर्शाया जाता है, क्योंकि यही वह दुराशय है जो अपराध का मूल बिन्दु है – परिवाद या सामग्री में यह दिखाने के लिये कुछ भी नहीं है कि अपीलकर्ता की ओर से बेईमानीपूर्ण प्रत्यावेदन या प्रलोभन था – हालांकि, यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय वचनभंग में अन्तर्यस्त नैतिक तत्व द्वारा प्रेरित हुआ और कतिपय संप्रेक्षण किया – इन सम्प्रेक्षण को अपलोपित कर दिया गया है – प्रत्यर्थी संख्या 02 द्वारा दर्ज करायी गयी एफ०आई०आर के आधार पर संस्थित कार्यवाही को अभिखण्डित कर दिया गया – दंड प्रक्रिया संहिता, 1860–धाराएँ 405, 406, 415 और 420।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारितः1 उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त द्वारा दाखिल आवेदन आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर विचारण न्यायालय के आदेश के बिरुद्ध था, जिसमें न्यायालय का कर्तव्य है कि स्वयं के समक्ष पेश की गयी सामग्री के प्रति अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करे और यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाले कि प्रथम दृष्टया मामला अभियुक्त के विरुद्ध निर्मित हुआ है। आरोप विरचित करने का कोई आदेश अभियुक्त के प्रति गम्भीर चिन्ता का विषय है, क्योंकि उससे उसकी सारभूत रूप से स्वतन्त्रता प्रभावित होती है। इसलिये, न्यायालयों को चाहिये कि वे इससे सतर्क रहें कि इस प्रक्रम पर उनका विनिश्चय अभियुक्त के प्रति कोई अपूरणीय क्षति कारित नहीं करता है। आरोपों को अभिखण्डित करने के पहलू पर आते हैं, यह सुस्थापित है कि ऐसा कार्य उच्च न्यायालय द्वारा आपवादिक मामलों में ही किये जाने की आवश्यकता है। यह भी सुस्थापित है कि विचारण प्रक्रिया में आरोपों को विरचित करना एक प्रारम्भिक प्रक्रम है, इसलिये उसमें न्यायालय आरोप अभिखण्डित करने के विनिश्चय को साक्ष्य की गुणवत्ता या मात्रा के आधार पर आधारित नहीं कर सकता, बल्कि तत्सम्बन्धी जांच को प्रथम दृष्टया परीक्षा तक ही सीमित रखना चाहिये।(पैरा 10, 11)

बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह 1977 सीआर०एल०जे० 1606 पर भरोसा किया।

2.1 पक्षकारों के बीच, विवाद ऋण संव्यवहार से उद्भूत होता है। अभिलेख से सम्मुख यही आता है कि प्रत्यर्थी सं० 2 ऋण उधार देने के पूर्व अपीलार्थी एवं उसके सम्मुख विद्यमान परिस्थितियों को जानता था। अग्रेतर यह एक स्वीकृत तथ्य है कि पूर्वोक्त रकम वसूल करने के क्रम में प्रत्यर्थी सं० 2 ने संक्षिप्त सिविल बाद संस्थित किया था, जो कि अभी भी न्यायनिर्णयन के लिये लम्बित है। विधि स्पष्ट रूप से धन के साधारण भुगतान/ विनियोग और धन या सम्पत्ति के न्यास के बीच अन्तर को मान्यता देती है। केवल वचन करार या संविदा का भंग तथ्यतः न्यास का स्पष्ट मामला हुये बिना भा० द० सं० की धारा 405 में अन्तर्विष्ट आपराधिक न्यासभंग के अपराध को गठित नहीं करता। या तो परिवाद में या हमारे समक्ष किसी सामग्री में इस तथ्य को निर्दिष्ट करते हुये कुछ भी नहीं है कि कोई ऐसी सम्पत्ति अपीलार्थी को किसी भी तरह सौंपी गयी थी, जिसे उसने बेईमानी से उसके स्वयं के अपने प्रयोग के लिये संपरिवर्तित कर लिया था, जिससे कि भा० द० सं० की धारा 406 के अधीन दण्डनीय धारा 405 के आवश्यक अवयव संतुष्ट होता हो। अतः विद्वान मजिस्ट्रेट से उक्त अपराध के लिये अपीलार्थीगण के विरुद्ध आदेशिका जारी करने में गम्भीर त्रुटि कारित हुई। थी। दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय भी इस प्रत्यक्ष त्रुटि को शुद्ध करने में असफल रहा था। (पैरा 12,13)

2.2 संविदाओं के सन्दर्भ में, केवल संविदा के भंग और छल करने के बीच सुभिन्नता कपटपूर्ण प्रलोभन एवं दुराशय पर निर्भर करेगा। हमारे समक्ष मामले में स्वीकृततः अपीलार्थी आर्थिक परेशानी से ग्रस्त था और इसलिये, उसने उस परेशानी की स्थिति का निवारण करने के लिये प्रत्यर्थी सं0 2 से सम्पर्क किया। अग्रेतर पूर्वोक्त धनराशि वसूल करने के क्रम में प्रत्यर्थी सं० 2 ने ऋण वसूल करने की अपेक्षा करते हुये संक्षिप्त सिविल बाद संस्थित किया था, जो अभी भी अधिनिर्णयन हेतु लम्बित है। राशि वापस करने के लिये अपीलार्थी की मात्र अक्षमता छल के लिये दाण्डिक अभियोजन को उद्भूत नहीं कर सकता, जब तक कि कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण आशय संव्यवहार के बिलकुल प्रारंभ से दर्शाया जाता, क्योंकि यही वह दुराशय है जो अपराध का मूल बिन्दु है। यहां तक कि यदि परिवाद में सभी तथ्यों एवं सामग्री को उनके प्राथमिक मूल्य

पर भी ग्रहण किया जाता है, तो भी कोई ऐसा बेईमानीपूर्ण प्रत्यावेदन या प्रलोभन होने का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता या उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।(पैरा 14)

हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य

(2000) 4 एससीसी 168: [2000] 2 एससीआर 859; ज्ञान सिंह बनाम

पंजाब राज्य (2012) 10 एससीसी 303: [2012] 8 एससीआर 753–पर भरोसा किया गया।

2.3 विधायिका का आशय केवल उन्हीं भंगों को आपराधिक बनाने का था, जो कपटपूर्ण बेईमानीपूर्ण या प्रवचनापूर्ण उत्प्रेरण के साथ हो, जिनका परिणाम भा० द० सं० की धारा 415 के अधीन अनैच्छिक एवं अदक्ष अन्तरणों में हुआ हो। फिर भी, यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय वचनभंग में अन्तर्यस्त नैतिक तत्व द्वारा प्रेरित हुआ है और कतिपय संप्रेक्षण किया। नीतिगत विचारण होने के कारण ऐसे सुझाब को निर्बन्धित किये जाने की आवश्यकता है। उच्च न्यायालय का पूर्वोक्त संप्रेक्षण न केवल इस मामले के न्यायनिर्णयन के लिये अनावश्यक था, बल्कि उसको अभियुक्त पर किसी प्रकार का लांछन लगाने के रूप में भी समझा जा सकता था। यह स्पष्ट रूप से वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध भारित गम्भीर स्थिति को परिलक्षित करता था। हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय को न्यायिक संयम को कायम रखना चाहिये था और दाण्डिक कार्यवाही के इस प्रक्रम पर ऐसे सामान्य संप्रेक्षण करने से प्रविरत रहना चाहिये था, क्योंकि उनका प्रभाव विचारण के न्यायनिर्णयन पर हो सकता था। इसलिये, आक्षेपित निर्णय के पैरा 42 एवं 43 में किये गये संपरीक्षणों को अपलोपित किया जाता है। द०प्र०सं० को धारा 482 के अधीन अपीलार्थी द्वारा दाखिल आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है और प्रत्यर्थी सं० 2 के आग्रह पर संस्थित एफ०आई०आर० के आधार पर प्रारंभ कार्यवाही एतद्द्वारा अभिखण्डित की जाती है। (पैरा 15,16,17,18)

न्यायनिर्णयज विधि संदर्भ

1977 क्रि एलजे 1606 आलंबित।

पैरा 11

[2000] 2 एससीआर 859 आलंबित।

पैरा 14

[2012] 8 एससीआर 753 आलंबित।

पैरा 15

क्रिमिनल अपीलीय क्षेत्राधिकारिताः आपराधिक अपील नं 9/ 2019 ।

गुजरात उच्च न्यायालय की अहमदाबाद पीठ के क्रिमिनल मिस आवेदन (एफआईआर/आदेश को अभिखण्डित एवं अपास्त करने के लिये) संख्या 4033/2012 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 12.04.2018 से

प्रवीण कुमार राय, हेमल किरीटकुमार शेठ, अपीलार्थीगण के लिए अधिवक्ता।

आईएच सैयद, वरिंदर कुमार शर्मा, सुश्री पूजा, सुश्री विशाखा, सुश्री पारुल लूथरा (सुश्री हेमंतिका वाही के लिए), उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्तागण।

न्यायालय का निर्णय एनवी रमना, न्यायमूर्ति. द्वारा दिया गया था

1. अनुमति प्रदान की गयी।

2. वर्तमान अपील दाण्डिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 4033 वर्ष 2012 में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.4.2018 के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसमें उच्च न्यायालय ने दाण्डिक वाद संख्या 388 वर्ष 2012 में अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 4.12.2013 के आरोपों की विरचित करने वाले आदेश को अभिखण्डित करने की अपेक्षा करने वाले अपीलार्थी के आवेदन को निरस्त कर दिया है।

3. ब्यौरेवार ढंग में अपील को उद्भूत करने वाले तथ्यों को यहां उल्लेख करना समीचीन है। प्रत्यर्थी सं– 2 परिवादी दर्शन फिसकल प्रा० लि० के नाम से धन उधार देने वाली कम्पनी का निदेशक है। अपीलार्थी, जो कि सेवानिवृत्त बैंक कर्मचारी है, ने परिवादी की कम्पनी से रू० 27,00,000 के ऋण के लिये मास जनवरी, 2008 में सम्पर्क किया था। तद्नुसार प्रत्यर्थी सं० 2 ने ऋण के रूप में निधि का अन्तरण किया था, जिसका पुनर्भुगतान अपीलार्थी द्वारा व्याज सहित एक वर्ष के भीतर किया जाना था। इसके पश्चात् अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं० 2 को रकम का पुनर्भुगतान नहीं किया। अग्रेतर, प्रत्यर्थी सं० 2 ने यह अभिकथित किया था कि जब उसने अपीलार्थी से सम्पर्क किया, तब उसे अपीलार्थी द्वारा उसके गम्भीर परिणाम भुगतने की धमकी दी गयी थी। इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं० 2 ने एक परिवाद दाखिल किया, जिसके आधार पर दिनांक 25.1.2012 की एफ० आई० आर०, जिसकी संख्या आई०/ सी० आर० संख्या 22/2012 थी, कगडपिथ थाना, अहमदाबाद के समक्ष भा० द० सं० की धारा 406, 409, 417, 420, 294 (ख) एवं 506 (2) के अधीन वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध दाखिल की गयी थी। अपीलार्थी को 29.1.2012 को गिरफ्तार कर लिये जाने के पश्चात् उच्च न्यायालय द्वारा उसे 23.2.2012 को जमानत पर छोड़ दिया गया था। अपीलार्थी ने द० प्र० सं० की धारा 482 के अंतर्गत एक आवेदन, एफ० आई० आर० संख्या आई०/ सी०

आर० संख्या 22/2012 को अभिखण्डित करने के लिये दाखिल किया।

4. आरोप पत्र संख्या 28 वर्ष 2012 दिनांकित 01.03.2012 अपीलार्थी के विरुद्ध भा० द० सं० की धारा 406, 420 एवं 417 के अंतर्गत दाखिल किया गया था। उसी के अनुसरण में, मजिस्ट्रेट ने समन जारी किये। अपीलार्थी ने यह अभिकथित किया था कि उसे 4.12.2013 को उक्त आरोप–पत्र की एक प्रति प्रदान की गयी थी और यह कि आरोप महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा उसी दिन उसको सुनवाई का अवसर दिये बिना ही खाली पत्रक में विरचित किये गये थे, क्योंकि अपीलार्थी के साथ तो उसका कोई अधिवक्ता ही नहीं था। अपीलार्थी ने यह अभिकथित किया है कि वह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के उल्लंघन में था।

5. पूर्वोक्त हुये विकास के परिप्रेक्ष्य में अपीलार्थी ने दाण्डिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 4033 वर्ष 2012 की प्रार्थना में संशोधन की अपेक्षा करते हुये एक आवेदन दाखिल किया, जिसमें उसने एफ० आई० आर० संख्या आई०/ सी० आर० संख्या 22/2012 में आरोप पत्र संख्या 28/2012 एवं दिनांक 4.12.2013 के आदेश से महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा विरचित आरोपों और अपर महानगर मजिस्ट्रेट के समक्ष लम्बित दाण्डिक वाद संख्या 388/2012 में गयी सभी अग्रिम कार्यवाही को भी अभिखण्डित एवं अपास्त करने की अपेक्षा करने के अनुरोध को शामिल करने की अपेक्षा की थी।

6. यहां यह उल्लेख करना समीचीन है कि एक ही समय पर प्रत्यर्थी सं0 2 ने रू० 33,46,225 की वसूली, जिसमें मूल धनराशि पर ब्याज भी शामिल था, की अपेक्षा करते हुये संक्षिप्त सिविल वाद संख्या 928/2011 में एक संक्षिप्त वाद भी दाखिल किया था। उसको 25.4.2011 को स्वीकार कर लिया गया था और वह अभी भी नगर सिविल न्यायाधीश, अहमदाबाद के समक्ष लम्बित है।

7. दिनांक 12.4.2018 के आदेश से, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा दाखिल की गयी कार्रवाई अभिखण्डित करने की याचिका को निरस्त कर दिया और विचारण न्यायालय को तीन मास के भीतर विचारण कार्यवाही पूरा करने का निर्देश दिया था। उच्च न्यायालय ने यह और संप्रेक्षण किया था कि प्रथम दृष्टया धारा 420 के अधीन छल करने का अपराध निर्मित होता है, किन्तु आपराधिक न्याय भंग से सरोकारित धारा 406 के अधीन आरोप प्रदत्त तथ्यात्मक परिदृश्य में लागू नहीं है। फिर भी, उच्च न्यायालय ने धारा 406 के अधीन आरोप नहीं हटाये और यह संप्रेक्षण किया था कि कोई मामला आरोप अभिखण्डित कराने के लिये निर्मित नहीं किया गया है। पूर्वोक्त निरस्तीकरण से व्यथित अपीलार्थी ने अब यह वर्तमान विशेष अनुमति याचिका दाखिल की है।

8. अपीलार्थी की ओर के अधिवक्ता ने यह अनुरोध किया कि परिवाद के परिशीलन से यही प्रकटन होगा कि अभिकथन जैसा कि परिवाद में अन्तर्विष्ट है, सिविल प्रकृति के हैं और ऐसे अध्यपेक्षित प्रकथनों का अभाव है, जिससे कि छल कारित करने के मामले को निर्मित किया जा सके। इसलिये, प्रथम दृष्टया अभिकथित अपराध के किये जाने का प्रकटन नहीं होता। इसके अलावा यह उल्लेख करना यहां समीचीन है

कि 21.4.2011 को संक्षिम वाद सं0 928 वर्ष 2011 दाखिल करने के पश्चात् परिवादी ने दिनांक 5.1.2012 का एक लिखित परिवाद दाखिल किया है और वर्तमान मामले को, जो कि प्रकृति में पूर्णतया सिविल है, अपीलार्थी को तंग करने के लिये दाण्डिक अपराध का स्वरूप देने का प्रयास किया है। अन्त में, प्रत्यर्थी सं० 2 द्वारा दाखिल किया गया दाण्डिक परिवाद अपराध की तारीख, अर्थात् 21.3.2008 से तीन वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत होने के पश्चात् प्रारम्भ किया गया है।

9. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी सं0 2 की ओर के अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय के निर्णय का समर्थन करते हुये अभिकथित किया है कि अपीलार्थी का प्रारम्भ से ही धोखा देने का कपटपूर्ण आशय था, जिसने प्रत्यर्थी सं० 2 को पूर्वोक्त रू० 27 लाख की रकम उधार देने हेतु प्रेरित किया था। अग्रेतर, अपीलार्थी का ऋण का पुनर्भुगतान करने का आशय कभी भी नहीं था, यद्यपि उसके लिये उससे कई अनुरोध किये गये थे। अधिवक्ता ने इस बात पर बल दिया था कि क्या आशय प्रारम्भ से ही छल करने का था या नहीं, यह तथ्य का प्रश्न है और उसका विनिश्चय केवल सम्पूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् ही किया जा सकता है।

10. हम इस मामले का विश्लेषण करें उसके पूर्व यह उल्लेख किया जाना है कि उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त द्वारा दाखिल आवेदन आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर विचारण न्यायालय के आदेश के बिरुद्ध था, जिसमें न्यायालय का कर्तव्य है कि स्वयं के समक्ष पेश की गयी सामग्री के प्रति अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करे और यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाले कि प्रथम दृष्टया मामला अभियुक्त के विरुद्ध निर्मित हुआ है। आरोप विरचित करने का कोई आदेश अभियुक्त के प्रति गम्भीर चिन्ता का विषय है, क्योंकि उससे उसकी सारभूत रूप से स्वतन्त्रता प्रभावित होती है। इसलिये, न्यायालयों को चाहिये कि वे इससे सतर्क रहें कि इस प्रक्रम पर उनका विनिश्चय अभियुक्त के प्रति कोई अपूरणीय क्षति कारित नहीं करता है।

11. अब आरोपों को अभिखण्डित करने के पहलू पर आते हैं, यह सुस्थापित है कि ऐसा कार्य उच्च न्यायालय द्वारा आपवादिक मामलों में ही किये जाने की आवश्यकता है। यह भी सुस्थापित है कि विचारण प्रक्रिया में आरोपों को विरचित करना एक प्रारम्भिक प्रक्रम है, इसलिये उसमें न्यायालय आरोप अभिखण्डित करने के विनिश्चय को साक्ष्य की गुणवत्ता या मात्रा के आधार पर आधारित नहीं कर सकता, बल्कि

तत्सम्बन्धी जांच को प्रथम दृष्टया परीक्षा तक ही सीमित रखना चाहिये। [बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह 1977 सी आर एल जे 1606 का संदर्भ]।

12. एतस्मिन् लागू आधारभूत सिद्धान्तों का संप्रेक्षण किये जाने के पश्चात् अब हमें अपीलार्थी के विरुद्ध व्यक्तिगत आरोपों पर विचार करने की आवश्यकता है। भा० द० सं० की धारा 405 के साथ पठित धारा 406 की ओर उन्मुख होते हुये, हम यह संप्रेक्षण करते हैं कि पक्षकारों के बीच, विवाद ऋण संव्यवहार से उद्भूत होता है। अभिलेख से सम्मुख यही आता है कि प्रत्यर्थी सं० 2 ऋण उधार देने के पूर्व अपीलार्थी एवं उसके सम्मुख विद्यमान परिस्थितियों को जानता था। अग्रेतर यह एक स्वीकृत तथ्य है कि पूर्वोक्त रकम वसूल करने के क्रम में प्रत्यर्थी सं० 2 ने संक्षिप्त सिविल बाद संस्थित किया था, जो कि अभी भी न्यायनिर्णयन के लिये लम्बित है। विधि स्पष्ट रूप से धन के साधारण भुगतान / विनियोग और धन या सम्पत्ति के न्यास के बीच अन्तर को मान्यता देती है। केवल वचन करार या संविदा का भंग तथ्यतः न्यास का स्पष्ट मामला हुये बिना भा० द० सं० की धारा 405 में अन्तर्विष्ट आपराधिक न्यासभंग के अपराध को गठित नहीं करता।

13. इसी सन्दर्भ में, हम यह उल्लेख कर सकते है कि या तो परिवाद में या हमारे समक्ष किसी सामग्री में इस तथ्य को निर्दिष्ट करते हुये कुछ भी नहीं है कि कोई ऐसी सम्पत्ति अपीलार्थी को किसी भी तरह सौंपी गयी थी, जिसे उसने बेईमानी से उसके स्वयं के अपने प्रयोग के लिये संपरिवर्तित कर लिया था, जिससे कि भा० द० सं० की धारा 406 के अधीन दण्डनीय धारा 405 के आवश्यक अवयव संतुष्ट होता हो। अतः विद्वान मजिस्ट्रेट से उक्त अपराध के लिये अपीलार्थीगण के विरुद्ध आदेशिका जारी करने में गम्भीर त्रुटि कारित हुई। थी। दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय भी इस प्रत्यक्ष त्रुटि को शुद्ध करने में असफल रहा था।

14. अब भा०द०सं० की धारा 420 के अधीन दण्डनीय अपराध के लिये धारा 415 के अधीन आरोप विरचित करने के प्रश्न पर आते हैं। संविदाओं के सन्दर्भ में, केवल संविदा के भंग और छल करने के बीच

सुभिन्नता कपटपूर्ण प्रलोभन एवं दुराशय पर निर्भर करेगा। (देखें हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य, (2000) 4 एस सी सी 168) हमारे समक्ष मामले में स्वीकृततः अपीलार्थी आर्थिक परेशानी से ग्रस्त था और इसलिये, उसने उस परेशानी की स्थिति का निवारण करने के लिये प्रत्यर्थी सं0 2 से सम्पर्क किया। अग्रेतर पूर्वोक्त धनराशि वसूल करने के क्रम में प्रत्यर्थी सं० 2 ने ऋण वसूल करने की अपेक्षा करते हुये संक्षिप्त सिविल बाद संस्थित किया था, जो अभी भी अधिनिर्णयन हेतु लम्बित है। राशि वापस करने के लिये अपीलार्थी की मात्र अक्षमता छल के लिये दाण्डिक अभियोजन को उद्भूत नहीं कर सकता, जब तक कि कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण आशय संव्यवहार के बिलकुल प्रारंभ से दर्शाया जाता, क्योंकि यही वह दुराशय है जो अपराध का मूल बिन्दु है। यहां तक कि यदि परिवाद में सभी तथ्यों एवं सामग्री को उनके प्राथमिक मूल्य पर भी ग्रहण किया जाता है, तो भी कोई ऐसा बेईमानीपूर्ण प्रत्यावेदन या प्रलोभन होने का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता या उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

15. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने कई मामलों में सामान्यतया सिविल विवादों, जैसे संविदात्मक बाध्यताओं के भंग को आपराधिक बनाने के विरुद्ध सतर्क किया है। [ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य (2012) 10 एस सी सी 303 2013 (1) सी सी एस सी 491 (एससी)] का संदर्भ ग्रहण करें]। विधायिका का आशय केवल उन्हीं भंगों को आपराधिक बनाने का था, जो कपटपूर्ण बेईमानीपूर्ण या प्रवचनापूर्ण उत्प्रेरण के साथ हो, जिनका परिणाम भा० द० सं० की धारा 415 के अधीन अनैच्छिक एवं अदक्ष अन्तरणों में हुआ हो।

16. फिर भी, यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय वचनभंग में अन्तर्यस्त नैतिक तत्व द्वारा प्रेरित हुआ है और कतिपय संप्रेक्षण किया। नीतिगत विचारण होने के कारण ऐसे सुझाब को निर्बन्धित किये जाने की आवश्यकता है। उच्च न्यायालय का पूर्वोक्त संप्रेक्षण न केवल इस मामले के न्यायनिर्णयन के लिये अनावश्यक था, बल्कि उसको अभियुक्त पर किसी प्रकार का लांछन लगाने के रूप में भी समझा जा सकता था। यह स्पष्ट रूप से वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध भारित गम्भीर स्थिति को परिलक्षित करता था।

17. हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय को न्यायिक संयम को कायम रखना चाहिये था और दाण्डिक कार्यवाही के इस प्रक्रम पर ऐसे सामान्य संप्रेक्षण करने से प्रविरत रहना चाहिये था, क्योंकि उनका प्रभाव विचारण के न्यायनिर्णयन पर हो सकता था। इसलिये, आक्षेपित निर्णय के पैरा 42 एवं 43 में किये गये संपरीक्षणों को अपलोपित किया जाता है।

18. उपर्युक्त के दृष्टिगत, हम दाण्डिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 4033 वर्ष 2012 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को बरकरार रखने में असमर्थ हैं और उसको एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। द०प्र०सं० को धारा 482 के अधीन अपीलार्थी द्वारा दाखिल आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है और प्रत्यर्थी सं० 2 के आग्रह पर संस्थित एफ०आई०आर० के आधार पर प्रारंभ कार्यवाही एतद्द्वारा अभिखण्डित की जाती है।

19. अपील को पूर्वोक्त निबन्धनों में अनुज्ञात किया जाता है।

अपील स्वीकृत।

SHABIH ZEHRA

Addl. Distt. Judge

Saharanpur